सामाजिक न्याय तथा सामाजिक कल्याण

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष: 011-47532596, 87501 87501

Web: www.drishtiias.com
E-mail : drishtiacademy@gmail.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिए निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

सामाजिक न्याय का अवधारणात्मक विवेचन
(Conceptual Interpretation of Social Justice)

सामाजिक न्याय का सिद्धांत *(Principle of Social Justice)*

'सामाजिक न्याय' शब्द का प्रयोग पहली बार 1840 में इटली के एक पादरी लुइगी तपारेली द' एजेग्लिओ (Luigi Taparelid Azeglio) द्वारा किया गया था, जबकि इस शब्द को पहचान 1848 में एन्टोनियो रोस्मिनी सरबाली (Antonio Rosmini Serbali) ने दिलाई।

आधुनिक काल में जॉन रॉल्स और अमर्त्य सेन जैसे विचारकों ने 'सामाजिक न्याय' को एक प्रमुख अवधारणा बना दिया है, साथ ही वर्तमान लोक-कल्याणकारी राज्य का मूल लक्ष्य भी 'सामाजिक न्याय' की स्थापना करना ही है। सामाजिक न्याय से आशय एक ऐसे न्यायपूर्ण समाज की स्थापना से है जिसमें सामाजिक-आर्थिक विषमताएँ न्यूनतम हों, समाज 'समावेशी' हो और संसाधनों का वितरण सर्वमान्य स्वीकृति के आधार पर हो।

सामाजिक न्याय का उद्देश्य राज्य के सभी नागरिकों को सामाजिक समानता उपलब्ध कराना है। समाज के प्रत्येक वर्ग के कल्याण के लिये व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आज़ादी आवश्यक हैं। भारत एक कल्याणकारी राज्य है और यहाँ सामाजिक न्याय का मुख्य उद्देश्य लैंगिक, जातिगत, नस्लीय एवं आर्थिक भेदभाव के बिना सभी नागरिकों की मूलभूत अधिकारों तक समान पहुँच सुनिश्चित करना है।

मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही सामाजिक न्याय और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच प्राथमिकता को लेकर विवाद रहा है। 20वीं सदी में 'सामाजिक न्याय' की अवधारणा के तीव्र विकास के साथ ही उपरोक्त दोनों मूल्यों में व्याप्त भिन्नता और भी अधिक स्पष्ट हुई है। अत: एक ओर, जहाँ पश्चिमी पूंजीवादी देशों ने अपनी संवैधानिक योजना में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रमुखता दी, वहीं दूसरी ओर, समाजवादी देशों ने सामाजिक न्याय को सर्वप्रमुख माना। जबकि, समकालीन राजनीतिक व्यवस्थाओं ने प्रमुखतया उदारवादी लोकतंत्र को अपनाते हुए 'सामाजिक न्याय व व्यक्तिगत स्वतंत्रता' के मध्य बेहतरीन सामंजस्य स्थापित किया है। भारतीय राजव्यवस्था में उदारवादी राजनीतिक लोकतंत्र के साथ-साथ समाजवादी आदर्शों को भी अपनाया गया है, और इसे ध्यान में रखते हुए ही संविधान की प्रस्तावना में 'सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय' का उल्लेख किया गया है। भारत के संविधान निर्माताओं ने 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' और 'सामाजिक न्याय' में संतुलन स्थापित करने के उद्देश्य से संविधान के भाग III में मौलिक अधिकारों के रूप में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को और भाग IV में राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के अंतर्गत सामाजिक न्याय को सुनिश्चित किया है।

'सामाजिक न्याय' शब्द को कठोर प्रतियोगिता के विरुद्ध कमज़ोर, वृद्धों, दीन-हीनों, महिलाओं, बच्चों और अन्य सुविधा वंचितों को राज्य द्वारा संरक्षण के अधिकार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि यह सिद्धांत एक विषमतामूलक समाज के 'सर्वसमावेशी समाज' के रूप में परिवर्तन में एक मार्गदर्शक का कार्य करता है। उल्लेखनीय है कि सामाजिक न्याय की संकल्पना का आविर्भाव सामाजिक अन्याय की पृष्ठभूमि में हुआ है। यह सबके लिये समान विकासीय दशाओं तथा प्रतिष्ठा और अवसर की समानता सुनिश्चित करता है। सामाजिक न्याय न केवल एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना करता है, बल्कि लोगों में विद्वेष और असामंजस्य को भी समाप्त करता है। अत: भारत में एकता और सामाजिक स्थायित्व सुनिश्चित करने की दृष्टि से सामाजिक न्याय का अत्यधिक महत्त्व है। यद्यपि सामान्य हित के स्वीकृत मानक स्थापित करने के लिये न्याय का विधि सम्मत होना आवश्यक है।

भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश के. सुब्बाराव के अनुसार, सामाजिक न्याय को हम व्यापक और सीमित दो अर्थों में समझ सकते हैं। सीमित अर्थों में इसका तात्पर्य लोगों के व्यक्तिगत संबंधों में अन्याय को समाप्त करने से है, जबकि व्यापक अर्थों में इसका तात्पर्य लोगों के जीवन में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संतुलन कायम करने से है। अत: सामाजिक न्याय को व्यापक अर्थों में ही समझा जाना चाहिये। चूँकि राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक गतिविधियाँ परस्पर अंतर्संबंधित

हैं इसलिये जब तक समाज हर तरह से प्रगति नहीं कर लेता तब तक सामाजिक न्याय को उसके सीमित अर्थों में भी सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सामाजिक न्याय एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना में सहायक होता है।

सामाजिक न्याय का मूल उद्देश्य समाज में महिलाओं, पिछड़े वर्गों, जनजातीय समुदायों, विकलांगों, वृद्धों और अनाथ बच्चों को समाज की मुख्य धारा से जोड़कर एक समावेशी समाज की स्थापना करना है। सामाजिक न्याय का लक्ष्य उस व्यवस्था की समाप्ति है जिसमें रूसो के शब्दों में "कोई व्यक्ति इतना अमीर न हो कि दूसरे व्यक्ति के जीवन पर नियंत्रण करे, न ही कोई व्यक्ति इतना निर्धन हो कि वह स्वयं को बेचने को बाध्य हो जाए।" सामाजिक न्याय की संकल्पना का मुख्य उद्देश्य पूंजीवादी सिद्धांत की कल्याणकारी विचारधारा को समाजवादी व्यवस्था के समतावादी लक्ष्य के साथ समायोजित करके समाज के प्रत्येक वर्ग का उत्थान एवं संतुलित विकास सुनिश्चित करना है।

सामाजिक न्याय से जुड़े सवाल-

1. सामाजिक न्याय के तहत किसका वितरण करना है?
2. वितरण के संभावित लाभार्थी कौन होंगे?
3. वास्तविक लाभार्थी चुनने का आधार क्या होगा?
4. इस लाभ का स्वरूप कैसा होगा?
5. यह वितरण कौन करेगा?
6. न्यायपूर्ण वितरण के लिये सफलता या असफलता का आकलन कैसे किया जाएगा?

सामाजिक न्याय की आवश्यकता क्यों?

1. सामाजिक न्याय से युक्त समाज में ही व्यक्तित्व का समुचित विकास संभव है,
2. व्यक्ति के गरिमापूर्ण जीवन को सुनिश्चित करने हेतु,
3. राज्य तंत्र की निरंकुशता पर रोक हेतु,
4. व्यक्ति व समुदाय के मध्य उचित सामंजस्य हेतु,
5. व्यक्ति व राज्य के संबंधों के निर्धारण हेतु,
6. असुरक्षित व हाशिये पर स्थित सामाजिक समूहों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने हेतु।
7. 'समावेशी समाज' की स्थापना हेतु।

सामाजिक न्याय की व्याख्या *(Explanation of Social Justice)*

सामाजिक न्याय एक ऐसे न्यायपूर्ण समाज (Just Society) की अवधारणा है जहाँ समाज के सभी वर्ग बिना किसी भेदभाव (भाषा, जाति, पंथ, संप्रदाय, लिंग, धर्म आदि) के समाज में आत्म-सम्मान एवं समान अधिकार प्राप्त करके आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से सशक्त हो सकें।

सामाजिक न्याय मुख्यत: विधिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सशक्तीकरण का मार्ग प्रशस्त करता है और समाज के निम्नलिखित वर्गों को मुख्य धारा से जोड़ने में मदद करता है-

(1) **समाज में हाशिये पर स्थित समूह (Marginalized groups of the society):** ट्रांस जेंडर, सेक्स वर्कर, चलवासी जनजातियाँ आदि।

(2) **समाज के पद-दलित समूह (Downtrodden groups of the society)**

(3) **समाज के असुरक्षित समूह (Vulnerable sections of the society):** अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ, नि:शक्त जन, एचआईवी/एड्स से पीड़ित तथा समाज के अल्पसंख्यक समूह इत्यादि।

(4) महिलाएँ, विकलांग, अनाथ, वृद्ध आदि।

सामाजिक न्याय के मूल तत्त्व
(Basic Elements of Social Justice)

विगत कुछ वर्षों में केंद्र सरकार और विभिन्न राज्य सरकारों ने समावेशी और संपोषणीय विकास पर ध्यान केंद्रित किया है। समाज के प्रत्येक तबके के लिये समान अवसर सुनिश्चित करने के लिये सामाजिक आर्थिक कल्याण की अनेक योजनाएँ चलाई जा रही हैं। समय के साथ-साथ सामाजिक न्याय शब्द भी अब काफी प्रचलित हो गया है तथा बुद्धिजीवियों, नीति निर्माताओं और गैर-सरकारी संगठनों में यह चर्चा का विषय बना हुआ है।

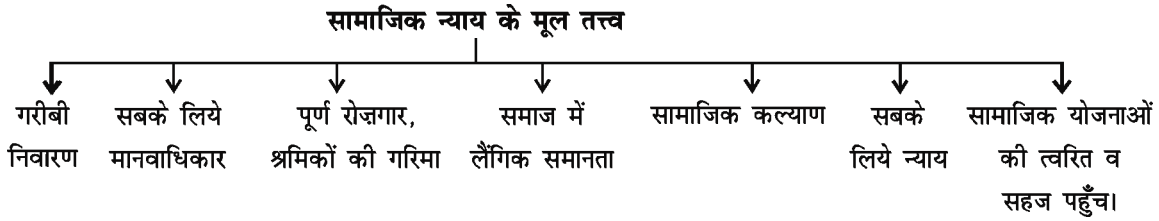

वैश्विक स्तर पर आने वाली चुनौतियों को देखते हुए आज दुनिया के लगभग सभी राष्ट्र स्वतंत्रता, समानता, सुरक्षा और सामाजिक कल्याण की नीतियों का निर्माण कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने नवंबर 2007 में 20 फरवरी को वार्षिक विश्व सामाजिक न्याय दिवस **(Annual world day of social justice)** घोषित किया। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) का संविधान भी यह कहता है कि सार्वभौमिक तथा पूर्ण शांति केवल तभी सुनिश्चित की जा सकती है जब यह सामाजिक न्याय पर आधारित हो।

सामाजिक न्याय से जुड़ी मुख्य बहस
(An Important debate associated with social justice)

सामान्य चर्चा में 'सामाजिक न्याय' तथा 'सामाजिक कल्याण' शब्द जितने सहज लगते हैं, बौद्धिक चर्चा में उतने ही कठिन हो जाते हैं।

सामाजिक न्याय समानता है या फिर स्वतंत्रता

कुछ बुद्धिजीवी तथा नीति-निर्धारक सामाजिक न्याय को **समानता** से जोड़कर देखते हैं, वहीं कुछ लोग इसका अर्थ **स्वतंत्रता** से लगाते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि सामाजिक न्याय के लिये स्वतंत्रता और समानता दोनों का होना ज़रूरी है, वहीं कुछ लोग एक कदम और आगे बढ़कर सामाजिक न्याय को समाज में उत्पन्न **बंधुता** के रूप में भी देखते हैं। जो लोग न्याय को स्वतंत्रता पर निर्भर मानते हैं उनका अपना समीकरण है जिसके आधार पर उन्होंने **पूंजीवादी समाज** का तानाबाना बुना है। वहीं, जो लोग न्याय को समानता पर निर्भर मानते हैं उन्होंने इसके लिये **साम्यवादी समाज** का ढाँचा स्थापित किया है।

सामाजिक न्याय को किसी एक परिभाषा तक ही सीमित नहीं किया जा सकता क्योंकि सैद्धांतिक तौर पर यह विधि, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र (कल्याण का अर्थशास्त्र) आदि विषयों से जुड़ा हुआ है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि सामाजिक न्याय समस्त सामाजिक मूल्यों का एकीकरण है। इसलिये, सामाजिक न्याय को 'स्वतंत्रता' या 'समानता' में से किसी एक के साथ जोड़कर देखने पर अंतर्विरोध उत्पन्न होता है, क्योंकि जितनी अधिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता दी जाएगी, समाज में समानता उतनी ही सीमित हो जाएगी। इसी प्रकार, समाज में समानता स्थापित करने के लिये जितना अधिक दबाव डाला जाएगा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता उतनी ही सीमित हो जाएगी।

स्वतंत्रता कतिपय बुनियादी अधिकारों की कल्पना करती है, जो व्यक्ति के नैसर्गिक विकास के लिये आवश्यक हैं। लेकिन तब अधिकारों का शायद ही कोई अर्थ हो; जब समाज का विकास असमानता के मानदंडों पर हुआ हो। **एक न्यायपूर्ण व्यवस्था वह है जो समानता पर आधारित हो; किसी भी व्यवस्था में जितनी अधिक विषमता होगी, अन्याय व शोषण की संभावना भी उतनी ही अधिक होगी।**

विभिन्न सामाजिक-राजनैतिक विचारकों के अनुसार समानता और स्वतंत्रता *(Equality and freedom according to different socio-political thinkers)*

पूंजीवादी (Capitalist) विचारक समानता की तुलना में स्वतंत्रता को वरीयता देते हैं। उनका मानना है कि समानता तथ्यात्मक नहीं है; वस्तुतः प्रकृति समानता के आदर्श का पालन नहीं करती। इसलिये, अगर समाज से वर्ग-भेद पूर्णतया मिटा भी दिया जाए तो भी समाज में शक्तिशाली व कमज़ोर, प्रतिभावान व साधारण बने रहेंगे। पूंजीवादी विचारक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था, प्रतिस्पर्धा, लाभ एवं विकास पर बल देते हैं। इसलिये, उनकी दृष्टि में समानता के लिये विशेष प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है।

उपयोगितावादी विचारकों (Utilitarianist Thinkers) की मान्यता भी बहुत कुछ इसी प्रकार की है। उनका मानना है कि समाज में उपयोगिता की दृष्टि से व्यक्तियों के प्रकार्य भिन्न-भिन्न होते हैं इसलिये उन्हें प्राप्त होने वाली आय में भिन्नता का होना स्वाभाविक है। उदारवादी विचारकों का मानना है कि आर्थिक क्रियाओं में समाज या राज्य का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। वे चयन की स्वतंत्रता को निजी स्वामित्व पर आधारित अर्थव्यवस्था एवं राजनैतिक व्यवस्था का आधारभूत तत्त्व मानते हैं। उदारवादी विचारक जहाँ निजी स्वामित्व, स्वतंत्र बाज़ार व्यवस्था एवं पूंजीवाद को प्रगति का मापदण्ड मानते हैं, वहीं समाजवादी विचारक इन्हें शोषण, बेकारी, निर्धनता, अमानवीय कार्य की दशाओं तथा आय, धन व सामाजिक स्थिति में घोर विषमता जैसी बुराइयों का कारण मानते हैं।

समाजवादी विचारकों (Socialist Thinkers) के अनुसार लाभ अर्जन की अनियंत्रित लालसा पर प्रभावकारी नियंत्रण लगाया जाना निर्धन, गरीब व शक्तिहीन लोगों की रक्षा की दृष्टि से जरूरी है जो कि राष्ट्रीयकरण और सार्वजनिक स्वामित्व के अधीन उत्पादन तथा उद्योगों पर राज्य के प्रभावकारी नियंत्रण के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

साम्यवादी विचारकों, विशेष रूप से **मार्क्स** व **एंजिल्स** ने एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना पर ज़ोर दिया है जिसमें समानता और असमानता का विवाद अप्रासंगिक हो जाता है। मार्क्सवादी विचारक एक वर्ग-विहीन और राज्यविहीन समाज की कल्पना करते हैं जहाँ समाज से शोषण की समाप्ति होगी, निजी पूंजी पर प्रतिबंध होगा और सामाजिक-आर्थिक विषमताएँ न्यूनतम होंगी तथा समाज का नारा **'प्रत्येक अपनी योग्यता के अनुसार तथा प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार'** होगा।

- समतावादी विचारक जॉन रॉल्स कहते हैं कि "असमानता का व्यवहार तब तक नहीं किया जाना चाहिये जब तक कि असमान व्यवहार प्रत्येक व्यक्ति के हित में न हो।" इस प्रकार जॉन रॉल्स अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस' में समानतापूर्ण व्यवहार पर अत्यधिक बल प्रदान करते हैं।
- वहीं दूसरी ओर प्रसिद्ध इतिहासविद् एवं राजनैतिक चिंतक लॉर्ड एक्टन समानता तथा स्वतंत्रता को आपस में विरोधी मानते हुए कहते हैं कि "जहाँ एक ओर समानता दरवाज़े से प्रवेश करती है तो वहीं दूसरी ओर खिड़की से स्वतंत्रता निकल जाती है।

निष्कर्ष *(Conclusion)*

किसी भी समाज में समानता सहज और वांछनीय तो है किन्तु पूर्ण समानता काल्पनिक और अव्यावहारिक है। प्राकृतिक असमानताओं की समाप्ति की कल्पना अनुचित है किंतु समाज द्वारा उत्पन्न व स्वीकृत असमानताओं (भेदभाव, तिरस्कार, आय से उत्पन्न विषमता आदि) को न्यूनतम किया जा सकता है। **अधिक विषमता संघर्ष को जन्म देती है।** शिक्षा, आय, राजनीतिक शक्ति और सामाजिक स्थिति से सम्बन्धित भेद या विषमता जब समाज में बढ़ जाते हैं तो इससे न केवल सामाजिक संगठन अपितु राष्ट्रीय एकता को भी खतरा पैदा हो जाता है। समाज के अस्तित्व को बनाए रखने और उसे सतत् विकास की ओर गतिमान बनाए रखने की दृष्टि से विषमताओं को न्यूनतम किया जाना ज़रूरी है, किन्तु अधिक विषमता को नियंत्रित करना और समानता की प्राप्ति के लिये प्रयास करना कहीं अधिक अनिवार्य हैं।

स्वतंत्रता और समानता सामाजिक न्याय के मूलभूत तत्त्व हैं। दोनों में से किसी एक का अभाव सामाजिक न्याय का अभाव है। स्वतंत्रता व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों के विकास के लिये ज़रूरी है। स्वतंत्रता के अभाव में उसकी सृजनशीलता,

कार्यशीलता और उद्यमिता क्षीण होती है जिससे समाज में उसका योगदान कम होता है। समानता के अभाव में दासत्व की स्थिति निर्मित हो जाती है, कुछ लोग बहुत आगे बढ़ जाते हैं वहीं दूसरों के लिये जीवन का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता। स्वतंत्रता एवं समानता दोनों ही न्याय की दृष्टि से आवश्यक हैं। समाज में जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति तथा विकास के लिये शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोज़गार का प्रश्न है तो समानता को निर्धारक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये।

सामाजिक कल्याण का अवधारणात्मक विवेचन *(Conceptual Interpretation of Social Welfare)*

कल्याणकारी राज्य की परिभाषा *(Definition of Welfare State)*

कल्याणकारी राज्य, शासन की वह अवधारणा है जिसमें 'राज्य' नागरिकों के आर्थिक और सामाजिक हितों के संरक्षण और संवर्धन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कल्याणकारी राज्य अवसरों की समानता, अतार्किक विषमताओं की समाप्ति, संसाधनों के समान वितरण तथा सार्वजनिक उत्तरदायित्व (उनके लिये जो जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित हैं) के सिद्धांतों पर आधारित होता है।

कल्याणकारी राज्य की अवधारणा में सुशासन (Good Governance), अवसर की समता, त्वरित निर्णय-निर्माण (Decision Making) तथा जनोन्मुखी, भ्रष्टाचार और अक्षमता रहित प्रशासन शामिल होते हैं।

कल्याणकारी राज्य की पृष्ठभूमि *(Background of the Welfare State)*

समाजवादी राज्य की तरह कल्याणकारी राज्य भी पूंजीवाद की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप विकसित हुआ। काम के अधिक घंटे और अमानवीय दशाएँ, महिलाओं और बच्चों का शोषण, मलिन बस्तियों के विकास, स्वच्छ जल की अनुपलब्धता, जल-निकासी का अभाव, सामाजिक संरक्षण का अभाव, पर्यावरणीय निम्नीकरण, जनजातीय क्षेत्रों में अनावश्यक हस्तक्षेप, अवैध भूमि अधिग्रहण, संसाधनों पर नियंत्रण जैसे औद्योगीकरण के दोषों तथा ऐसे ही अन्य कारकों ने राज्य को इनके संबंध में विधायी उपाय अपनाने हेतु मजबूर किया। साथ ही, प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध से उपजी विशाल सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु राज्य का हस्तक्षेप आवश्यक भी था।

तीव्र औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा अनेक सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं ने राज्य को व्यक्तिगत क्रियाकलापों में हस्तक्षेप करने पर मजबूर किया। इसलिये दो विश्व युद्धों के बाद अधिकांश यूरोपीय देशों ने सामाजिक सुरक्षा योजनाओं, बीमारी बीमा, बेरोज़गारी बीमा तथा वृद्धावस्था पेंशन जैसे कल्याणकारी उपायों की शुरुआत की। अमेरिका में राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के "न्यू डील प्रोग्राम्स" (New Deal Programmes) वर्ष 1933 से 1938 के बीच अमरीका में लागू किये गए। कल्याणकारी राज्य के विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

एक कल्याणकारी राज्य विकास कार्यों, सामाजिक कल्याण तथा आर्थिक असमानता में कमी लाने के उपायों के अलावा सामान्य जनजीवन के उत्थान के लिये भी प्रयास करता है। यह नागरिकों को अनेक प्रकार की सामाजिक सेवाएँ उपलब्ध कराता है। ऐसा कहा जाता है कि "कल्याणकारी राज्य में व्यक्ति को केवल जन्म लेना होता है, शेष कार्य राज्य करता है।" इसलिये इसे 'Cradle to Grave' राज्य भी कहा जाता है। कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण करना है, और इसके लिये राज्य नियोजन तथा ऐसे ही अन्य उपाय करता है। टी.डब्लू.केन्ट कल्याणकारी राज्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि "ऐसा राज्य अपने नागरिकों को बड़े पैमाने पर सामाजिक सेवाएँ उपलब्ध कराता है।" कल्याणकारी राज्य न केवल सभी अत्यावश्यक विषयो में नागरिकों के क्रियाकलापों को विनियमित करता है, बल्कि सभी आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं के संबंध में ऐसे प्रावधान करता है कि लाभ का वितरण आवश्यकतानुसार हो, जबकि कार्यभार का वहन व्यक्तिगत क्षमता के अनुरूप हो। अतः इसे 'सेवा राज्य' (Service State) के रूप में भी जाना जाता है।

कल्याणकारी राज्य के पक्ष में तर्क *(Justified Points of the Welfare State)*

1. कल्याणकारी राज्य व्यक्तिवाद (Individualism) और समाजवाद (Socialism) में संतुलन स्थापित करता है। यह राज्य को न तो आवश्यक बुराई के रूप में परिभाषित करता है, और न ही इसे सर्वाधिक शक्तिशाली संस्था बताता है। इसमें राज्य को व्यक्तियों के "मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक" के रूप में देखा जाता है।
2. कल्याणकारी राज्य मिश्रित अर्थव्यवस्था का समर्थन करता है। यह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास में सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों की भागीदारी पर बल देता है।
3. कल्याणकारी राज्य अर्थव्यवस्था को नियोजन (Planning) के माध्यम से नियंत्रित और विनियमित करता है। राज्य ही लोगों के भौतिक कल्याण की भी जिम्मेदारी निभाता है।
4. कल्याणकारी राज्य व्यक्तियों की मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति सुनिश्चित करता है, और सामाजिक सुरक्षा की गारंटी प्रदान करता है। इसके अलावा, सभी व्यक्तियों को रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराना राज्य का ही दायित्व माना जाता है।
5. कल्याणकारी राज्य सामाजिक न्याय को बढ़ावा देता है, जबकि सामाजिक न्याय का सिद्धांत लोकतंत्र को सुदृढ़, उद्देश्यपूर्ण,अर्थपूर्ण और गतिशील बनाता है तथा समाज में प्रचलित सभी असमानताओं को समाप्त करता है।
6. कल्याणकारी राज्य लोकतांत्रिक राजनीतिक संरचना में सभी महिलाओं एवं पुरुषों के समान अधिकारों का समर्थन करता है।

भारत में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा *(Concept of Welfare State in India)*

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में अनेक समस्याएँ एवं चुनौतियाँ विद्यमान थीं। सामाजिक और आर्थिक असमानता सर्वव्यापी थी; इसके अलावा, आर्थिक रूप से भी भारत की स्थिति दयनीय थी, समाज के सभी कमज़ोर वर्ग जैसे- महिलाएँ, बच्चे एवं दलित जीवन की मूलभूत सुविधाओं से वंचित थे। ब्रिटिश शासन के दौरान 'सामाजिक कल्याण' सरकार के प्राथमिक उद्देश्यों में शामिल नहीं था। उस समय सरकार का मुख्य बल कानून व्यवस्था को बनाए रखने तथा ब्रिटिश हितों के लिये भारतीय लोगों के आर्थिक शोषण पर था।

भारतीय इतिहास में अनेक राजाओं/शासकों ने आम नागरिकों के कल्याण एवं खुशी को सर्वाधिक प्रमुखता दी है। उदाहरण के लिये, मौर्य साम्राज्य और विक्रमादित्य का शासन काल बहुत हद तक कल्याणकारी राज्य के ही उदाहरण थे। प्राचीन काल में अशोक के शासन का स्वर्णिम युग और मध्यकाल में अकबर का शासन दो ऐसे अभूतपूर्व शासकों के उदाहरण हैं जिन्होंने अपने-अपने समय में वास्तविक अर्थों में एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की।

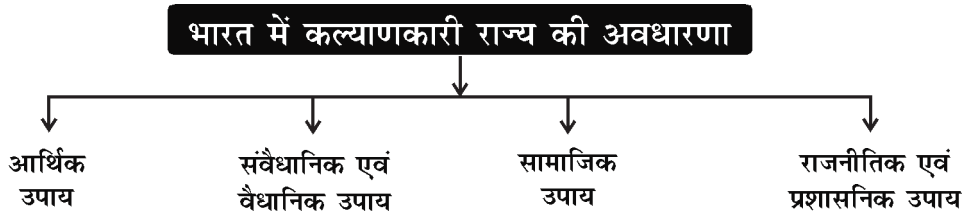

1. **आर्थिक उपाय *(Economic Measures)*:** 200 वर्षों तक ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के कारण स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था अल्पविकसित, अर्द्ध-सामंती, पिछड़ी एवं गतिहीन अवस्था में थी। 1947-48 में भारत की प्रति व्यक्ति आय बहुत कम थी, जनसंख्या का एक बड़ा भाग अत्यधिक गरीब था जिसके पास न तो पर्याप्त भोजन की व्यवस्था थी, न पहनने के लिये कपड़े, और न ही रहने के लिये घर ही था। 1948 में भारत की लगभग 70 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या कृषि में संलग्न थी और कृषि भी पिछड़ी अवस्था में थी। उस समय देश में औद्योगिक विकास बहुत ही कम हुआ था और सरकार उत्पादन के लिये मशीनरी तथा आवश्यकता की अन्य वस्तुओं के लिये आयात पर निर्भर थी। 1948 में देश की केवल 14 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में रहती थी, जबकि शेष 86 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने समाजवादी लोकतांत्रिक मॉडल के साथ-साथ सोवियत संघ की नियोजित अर्थव्यवस्था के प्रारूप को अपनाया। स्वतंत्रता के आरंभिक वर्षों में जवाहरलाल नेहरू और पी.सी. महालनोविस के नेतृत्व में देश की आर्थिक नीति का निर्माण किया गया। फलस्वरूप भारत ने अत्यधिक नियंत्रित, केन्द्रीकृत तथा नियोजित अर्थव्यवस्था के मिश्रित मॉडल को अपनाया जिसमें राज्य और निजी क्षेत्र दोनों को संसाधनों के उपयोग की छूट थी। विभिन्न क्षेत्रों का विकास सुनिश्चित करने हेतु राज्य द्वारा भारी उद्योगों व सार्वजनिक उपक्रमों को स्थापित किया गया। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से संसाधनों का समुचित दोहन व वितरण किया गया। राज्य के नियंत्रण के अधीन विभिन्न उद्यमों तथा केंद्र द्वारा वित्त-पोषित शिक्षण संस्थानों की स्थापना की गई। आर्थिक कल्याण की अवधारणा को अब गरीबी, निरक्षरता तथा स्वास्थ्य मुद्दों के संदर्भ में सुरक्षा संजाल के रूप में पहचान मिल चुकी थी, लेकिन 60-70 के दशक में हुई हरित क्रांति के बाद जैसे ही लोगों की क्रय-शक्ति में वृद्धि हुई वैसे ही सरकार द्वारा भी सड़क, रेलवे तथा जहाजरानी जैसे आधारभूत अवसंरचना के क्षेत्रों में निवेश को बढ़ावा गया। हालाँकि, बेरोज़गारी तथा अल्प-बेरोज़गारी के निरंतर उच्च स्तर ने हरित क्रांति और मिश्रित अर्थव्यवस्था के लाभों की अनदेखी कर दी। इससे श्रम बल का प्रतिस्थापन, गरीबी, ग्रामीण ऋणग्रस्तता, अत्यधिक निम्न वेतन और कम उत्पादकता जैसी चुनौतियाँ उभरकर सामने आईं। 1991 से भारत ने अपनी अर्थव्यवस्था में उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की नीति को अपनाया और तब से आर्थिक कल्याण की अवधारणा इस प्रकार है-

1. सामाजिक क्षेत्र के व्यय में वृद्धि (विशेषकर शिक्षा और स्वास्थ्य में)।
2. अल्पविकसित क्षेत्रों के लिये साख आपूर्ति प्रणाली की प्रभावकारिता में वृद्धि।
3. मनरेगा, JNNURM, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना तथा भारत निर्माण जैसे विभिन्न आय सृजक, वित्तीय और सामाजिक समावेशन के कार्यक्रमों की शुरुआत। जन-धन योजना, मेक इन इंडिया, स्किल इंडिया, उज्ज्वला योजना, स्मार्ट सिटी मिशन, वन रैंक, वन पेंशन, दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना, प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना इत्यादि।

2. **संवैधानिक उपाय *(Constitutional Measures)*:** स्वतंत्रता प्राप्ति के समय संविधान निर्माता सामाजिक समानता और लोगों के कल्याण की भावना से अत्यधिक प्रभावित थे। उनका मानना था कि इतने महत्त्वपूर्ण कार्य को केवल राज्य द्वारा ही किया जा सकता है। भारतीय संविधान का निर्माण 20वीं सदी के मध्य में किया गया जो कि लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का समय था। अत: भारतीय संविधान में भी कल्याणकारी राज्य के दर्शन को अपनाया गया।

संविधान की प्रस्तावना स्पष्ट रूप से यह इंगित करती है कि लोगों का सामान्य कल्याण भारतीय संविधान का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। प्रस्तावना में सभी नागरिकों के लिये सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के साथ-साथ विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता तथा प्रतिष्ठा और अवसर की समता सुनिश्चित की गई है। हालाँकि, "कल्याणकारी राज्य" शब्दावली का संविधान में कहीं भी स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है लेकिन भारतीय संविधान का अंतिम लक्ष्य और उद्देश्य इसकी ओर स्पष्ट संकेत करते हैं। मूल अधिकारों के माध्यम से विषमताओं पर रोक लगाकर, विशेषकर आरक्षण के विविध प्रावधानों के माध्यम से समाज में समानता स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

सामाजिक कल्याण के लिये संविधान के अंतर्गत विभिन्न प्रावधान: मूल अधिकारों के अंतर्गत समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 - 18), शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24), धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28) और संस्कृति व शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29-30) भी सामाजिक कल्याण को सुनिश्चित करते हैं।

विभिन्न संवैधानिक आयोगों का गठन (SC, ST एवं पिछड़ा वर्ग आयोग) भाषायी अल्पसंख्यकों हेतु विशेष अधिकारी की नियुक्ति, लोकसभा और विधानसभा में स्थानों का आरक्षण।

इसके अतिरिक्त, विभिन्न वैधानिक आयोगों (महिला आयोग, मानवाधिकार आयोग, अल्पसंख्यक आयोग आदि) के गठन के माध्यम से सभी लोगों के सामाजिक कल्याण को सुनिश्चित किया गया है।

यद्यपि, राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के अंतर्गत भारत में एक समाजवादी व्यवस्था की स्थापना सुनिश्चित की गई है। फिर भी, निदेशक तत्त्वों के अंतर्गत कुछ विशेष प्रावधान सामाजिक कल्याण की अभिवृद्धि पर ही केंद्रित हैं:

- **अनुच्छेद 38**
  (1) राज्य लोगों के कल्याण की अभिवृद्धि के लिये प्रयास करेगा।
  (2) राज्य आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा।
- **अनुच्छेद 39**:
  (a) सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार।
  (b) राज्य सामूहिक हित को सुनिश्चित करेगा।
  (c) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि उत्पादन के साधनों का सर्वसाधारण के लिये अहितकारी संकेंद्रण न हो।
  (d) समान कार्य के लिये समान वेतन।
  (e) किसी भी आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर पुरुष एवं महिला श्रमिकों तथा बच्चे का शोषण नहीं होगा।
  (f) बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएँ दी जाएँ और उनकी शोषण से रक्षा की जाए।
- **अनुच्छेद 39क:** राज्य, आर्थिक रूप से कमज़ोर तथा अन्य निर्योग्यताओं से पीड़ित नागररिकों के लिये नि:शुल्क सहायता की व्यवस्था करेगा।
- **अनुच्छेद 41:** राज्य, बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और नि:शक्तता से पीड़ित व्यक्तियों को लोक सहायता प्रदान करने का प्रभावी उपबन्ध करेगा।
- **अनुच्छेद 42:**राज्य, काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिये और प्रसूति सहायता के लिये उपबन्ध करेगा।
- **अनुच्छेद 46:**राज्य, जनता के दुर्बल वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि के साथ-साथ सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी सुरक्षा करेगा।
- **अनुच्छेद 47:**राज्य, लोक स्वास्थ्य में सुधार के लिये मादक पेयों और स्वास्थ्य के लिये हानिकर औषधियों के चिकित्सकीय कार्यों से भिन्न उपयोग पर रोक लगाएगा।
- **अनुच्छेद 48क:**राज्य, देश के पर्यावरण के संरक्षण, संवर्धन तथा वन एवं वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।

3. **सामाजिक उपाय *(Social Measures)*:** संविधान की उद्देशिका में भारत को एक 'समाजवादी' राज्य घोषित किया गया है और यह शब्द अपने आप में सरकार की सामाजिक कल्याण के प्रति जवाबदेहिता को सुनिश्चित करने का एक अर्थपूर्ण प्रमाण है। हालाँकि, भारत में समाजवाद को रूसी समाजवाद के संदर्भ में नहीं समझा जाना चाहिये क्योंकि वहाँ सभी संसाधनों पर राज्य का नियंत्रण होता है और राज्य ही सभी नागरिकों के कल्याण को सुनिश्चित करता है। भारतीय संविधान में समाजवाद आय की असमानता को समाप्त करने और जीवन स्तर के मानकों को सुधारने के लक्ष्य के रूप में निहित है। डी.एस. नाकरा बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने समाजवाद के संदर्भ में स्पष्ट करते हुए कहा-

एक समाजवादी राज्य का प्रमुख उद्देश्य आय तथा प्रतिष्ठा की असमानता और जीवन स्तर में विद्यमान असमानता को समाप्त करना है। समाजवाद का मूल लक्ष्य कार्यशील लोगों को गरिमापूर्ण जीवन और विशेषकर जीवन पर्यंत सुरक्षा उपलब्ध कराना है।

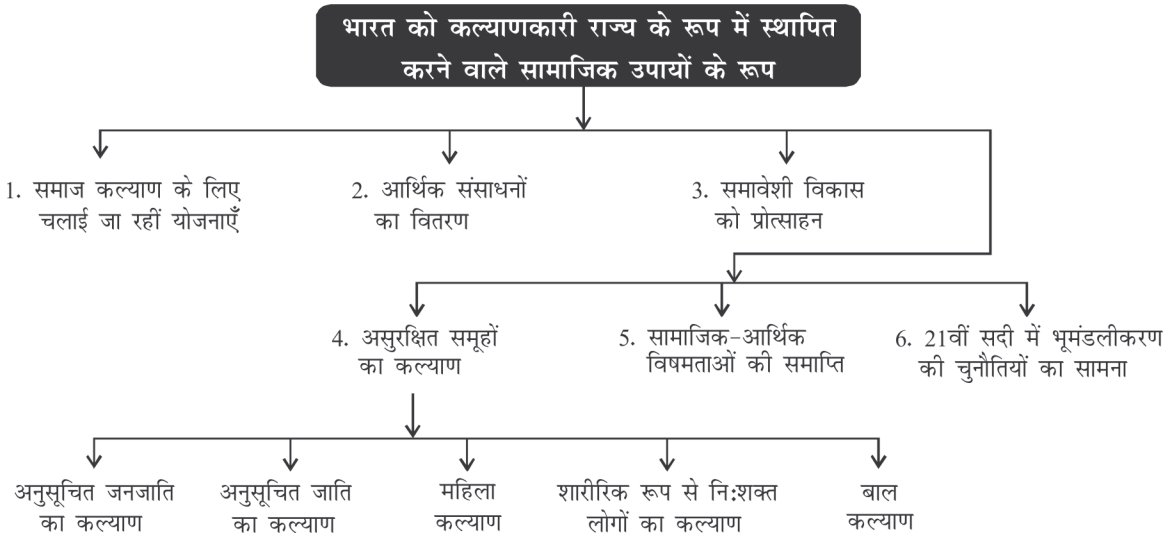

4. **राजनीतिक व प्रशासनिक उपाय (Political and Administrative Measures):** अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के पश्चात् आए भूमंडलीकरण के दौर में भारत ने तकनीक, अनुसंधान एवं विकास, सेवाओं तथा आर्थिक विकास के क्षेत्र में नई ऊँचाइयों को छुआ है, लेकिन साथ ही बेहतर जीवन स्तर, आवास, शिक्षा और स्वास्थ्य आदि सुविधाओं की मांग में भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।

   किसी भी देश में सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक न्याय की स्थापना में प्रशासन प्रमुख भूमिका निभाता है। 1991 के आर्थिक सुधारों के साथ-साथ लोक कल्याणकारी राज्य की प्रवृत्ति को बनाए रखने की दृष्टि से नौकरशाही की प्रासंगिकता में कई गुना वृद्धि हुई है। अब, इसी नौकरशाही को विकास प्रशासन के नाम से जाना जाता है।

   भारत में कल्याणकारी राज्य की स्थापना में नौकरशाही/प्रशासन को एक अभिकर्त्ता के रूप में स्थापित करने वाले प्रावधान-

   शासन का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण (73वाँ और 74वाँ संविधान संशोधन)।

   सामाजिक-आर्थिक विकास के लिये सार्वजनिक-निजी सहभागिता (PPP) को प्रोत्साहन।

   लाइसेंस राज की समाप्ति।

   कल्याणकारी योजनाएँ (आर.टी.आई., सिटीजन चार्टर), और ई-शासन के साथ-साथ शासन में अधिकाधिक जवाबदेहिता और पारदर्शिता।

भारत में असुरक्षित, हाशिये पर स्थित एवं उपेक्षित समूह/समुदाय
(Vulnerable, Marginalized and Disadvantaged Groups/Communities in India)

असुरक्षित समूह का अर्थ *(Meaning of Vulnerable Groups)*

''असुरक्षित' समूह का अर्थ अत्यंत अस्पष्ट है। साधारण शब्दों में कहा जाए तो ऐसे समूह जो शारीरिक अथवा भावनात्मक क्षति की दृष्टि से अत्यधिक संवेदनशील होते हैं या समाज में अपेक्षाकृत कम लाभ की स्थिति में होते है, उन्हें असुरक्षित समूह के अंतर्गत शामिल किया जा सकता है। इसी प्रकार, असुरक्षित समूह में ऐसे लोगों को भी शामिल किया जाता है जो न तो आरामदायक जीवन जीने में सक्षम होते हैं और न ही इन्हें विकास के समुचित अवसर ही उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रतिकूल सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक दशाओं के चलते वे अपने मूलभूत मानवाधिकारों का उपयोग करने में भी सक्षम नहीं होते हैं।